

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 72 — जरासन्ध-वध

5 October 2026



तीन क्षत्रिय ब्राह्मण-वेश में गिरिव्रज आते हैं, एक अभिमानी राजा अपना वचन निभाकर उन्हें युद्ध का दान देता है, और कृष्ण के हाथों में चीरी गई एक छोटी-सी टहनी जरासन्ध का भाग्य तय कर देती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस बहत्तरवें अध्याय में युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ की अभिलाषा कृष्ण के सामने रखते हैं, और प्रभु उनके संकल्प को आशीर्वाद देकर गिरिव्रज की ओर, उस राजा की ओर ले चलते हैं जो अकेला यज्ञ के मार्ग में खड़ा है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 72 (द्विसप्ततितम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: जरासन्ध-वध
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: इन्द्रप्रस्थ की राजसभा; फिर मगध में जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज
- केंद्रीय विषय: युधिष्ठिर का राजसूय-संकल्प; भक्त के विषय में प्रभु का उपदेश; जरासन्ध के सामने ब्राह्मण-वेशधारी तीन वीर; सत्ताईस दिन का द्वन्द्व; जरासन्ध का अन्त और बन्दी राजाओं की मुक्ति
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 1-48
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

इकहत्तरवें अध्याय में कृष्ण अपनी रानियों और सेना सहित द्वारका से इन्द्रप्रस्थ पधारे, जहाँ युधिष्ठिर, कुन्ती, द्रौपदी और समूची नगरी ने उमड़ते प्रेम से उनका स्वागत किया, और वे राजा को प्रसन्न करने के लिए कई मास वहीं रहे। अब भरी सभा में युधिष्ठिर अपने हृदय में पकती हुई अभिलाषा कहते हैं।

सभा में युधिष्ठिर की प्रार्थना

शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं कि एक दिन युधिष्ठिर अपनी सभा में मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों, भीम आदि भाइयों, आचार्यों, कुल के वृद्धों, जाति-बन्धुओं और सम्बन्धियों से घिरे बैठे थे। उन सबके सुनते हुए उन्होंने कृष्ण की ओर मुड़कर निवेदन किया।

ऋतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः ।

यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत् सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

kratu-rājena govinda rājasūyena pāvanīḥ yakṣye vibhūtīr bhavatas tat sampādaya naḥ prabho

अर्थ: हे गोविन्द, यज्ञों के राजा राजसूय के द्वारा मैं आपकी पावन विभूतियों — उन देवताओं की, जो आपके ही अंश हैं — आराधना करना चाहता हूँ; हे प्रभु, कृपा करके हमारा यह मनोरथ पूर्ण कीजिए। (स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 3)

फिर राजा ने प्रभु की उन पादुकाओं का गुणगान किया जो समस्त अमंगल का नाश करती हैं: जो शुद्धचित्त जन निरन्तर उनकी सेवा, ध्यान और कीर्तन करते हैं, वे जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाते हैं और यदि सांसारिक वर माँगें तो वह भी पाते हैं, जबकि दूसरों को दोनों में से कुछ नहीं मिलता। उन्होंने प्रार्थना की कि यह संसार अपनी आँखों से आपके चरणकमलों की सेवा का प्रभाव देखे; कुरु और सृज्जय वंश के प्रमुखों को दिखाइए कि आपकी उपासना करने वालों और न करने वालों की क्या गति होती है। सबके आत्मा, समदर्शी और स्वसुख में स्थित आप में ‘अपना’ और ‘पराया’ का भेद नहीं है; कल्पवृक्ष की भाँति आप प्रत्येक की सेवा के अनुरूप ही कृपा करते हैं, इसमें कोई पक्षपात नहीं।

प्रभु संकल्प को आशीवाद देते हैं

कृष्ण ने स्नेह से उत्तर दिया। हे शत्रुदमन राजन्, तुम्हारा निश्चय उत्तम है; इस यज्ञ से तुम्हारी कल्याणमयी कीर्ति समस्त लोकों में फैलेगी। ऋषि, पितर, देवता, तुम्हारे मित्र और बन्धु, स्वयं में और वस्तुतः सभी प्राणी इस क्रतुराज की कामना करते हैं। सब राजाओं को जीतकर पृथ्वी को वश में करो, सारी सामग्री जुटाओ और तब इस महायज्ञ का अनुष्ठान करो।

एते ते भ्रातरो राजन् लोकपालांशसम्भवाः ।

जितोऽस्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥ १० ॥

ete te bhrātaro rājan loka-pālāṁśa-sambhavāḥ jito 'smy ātmavatā te 'haṁ durjayo yo 'kṛtātmabhiḥ

अर्थ: हे राजन्, तुम्हारे ये भाई लोकपालों के अंश से उत्पन्न हुए हैं; और मैं, जिसे अजितेन्द्रिय जन कभी नहीं जीत सकते, तुम जैसे संयमी पुरुष के द्वारा जीत लिया गया हूँ। (स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 10)

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।

विभूतिभिर्वाभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥

na kaścin mat-param loka tejasā yaśasā śriyā vibhūtibhir vābhibhaved devo 'pi kim u pārthivaḥ

अर्थ: इस संसार में कोई भी — देवता तक नहीं, फिर पृथ्वी के राजा की तो बात ही क्या — अपने तेज, यश, लक्ष्मी या ऐश्वर्य के बल पर मेरे भक्त को पराभूत नहीं कर सकता। (स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 11)



भरी सभा में युधिष्ठिर प्रभु से राजसूय की याचना करते हैं, और कृष्ण उत्तर देते हैं कि असंयमियों के लिए दुर्जय वे स्वयं एक संयमी राजा से जीत लिए गए हैं, और कोई शक्ति उनके भक्त को पराभूत नहीं कर सकती (श्लोक 10-11)।

यहीं इस अध्याय का हृदय है। युधिष्ठिर ने माँगा था कि संसार उनके चरणों की सेवा का फल देखे, और प्रभु का यह उत्तर आगे की सारी घटनाओं को समझा देता है। वे सेनाओं से नहीं, आत्मसंयम से जीते जाते हैं; और जो उनका हो गया, उसे कोई शक्ति दबा नहीं सकती। जरासन्ध अन्ततः भीम की भुजा से नहीं, उस भुजा के पीछे खड़े प्रभु से हारता है। राजसूय प्रभु की विभूतियों के द्वारा उन्हीं की उपासना है, इसलिए वे स्वयं अपने भक्त के माध्यम से उसकी बाधा हटाते हैं, ताकि सभा के राजा वही देखें जो युधिष्ठिर ने माँगा था।

दिग्विजय

प्रभु के वचन सुनकर युधिष्ठिर आनन्द से भर उठे और उनका मुख कमल-सा खिल गया। उन्होंने भाइयों को दिशाओं की विजय के लिए नियुक्त किया, और कृष्ण ने पाण्डवों में अपना तेज भरकर उन्हें अजेय बना दिया। सहदेव सृज्जयों के साथ दक्षिण गए, नकुल मत्स्यों के साथ पश्चिम, अर्जुन केकयों के साथ उत्तर और भीम मद्रों के साथ पूर्व। अपने पराक्रम से राजाओं को जीतकर वे हर दिशा से यज्ञ के लिए प्रचुर धन ले आए।

किन्तु जब युधिष्ठिर ने सुना कि जरासन्ध अब भी अजेय है, तो वे चिन्तित हो गए। तब कृष्ण ने उनके सामने वह उपाय रखा जो उद्धव ने कभी सुझाया था; और भीमसेन, अर्जुन और कृष्ण ब्राह्मणों के बाह्य चिह्न धारण कर बृहद्रथ के पुत्र की नगरी गिरिव्रज की ओर चल पड़े।

गिरिव्रज के द्वार पर तीन अतिथि

जरासन्ध ब्राह्मणों का भक्त था और गृहस्थ-धर्म का निष्ठावान पालन करता था। इसलिए तीनों क्षत्रिय अतिथि-सत्कार के नियत समय पर उसके महल में पहुँचे और अपनी माँग रखी। हे राजन्, आपका कल्याण हो; हमें दूर से किसी प्रयोजन से आए अतिथि जानिए और जो हम चाहते हैं वह हमें दीजिए।

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ।

किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥

kiṁ durmarṣaṁ titikṣūṇāṁ kiṁ akāryam asādhubhiḥ kiṁ na deyaṁ vadānyānāṁ kaḥ paraḥ sama-darśinām

अर्थ: सहनशीलों के लिए क्या असह्य है? दुष्टों के लिए क्या अकरणीय है? उदार दाताओं के लिए क्या अदेय है? और समदर्शियों के लिए पराया कौन है? (स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 19)

उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाई। जो समर्थ पुरुष अपने नश्वर शरीर से वह स्थायी यश नहीं कमाता जिसे सत्पुरुष गाते हैं, वह केवल दया और निन्दा का पात्र है। हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, शिबि और बलि, उच्छ्वृत्ति से जीने वाले मुद्गल मुनि, पुरानी कथा के कपोत और व्याध, और ऐसे अनेक जन नश्वर के द्वारा अविनाशी को पा गए।

जरासन्ध का चिन्तन और उसका वचन

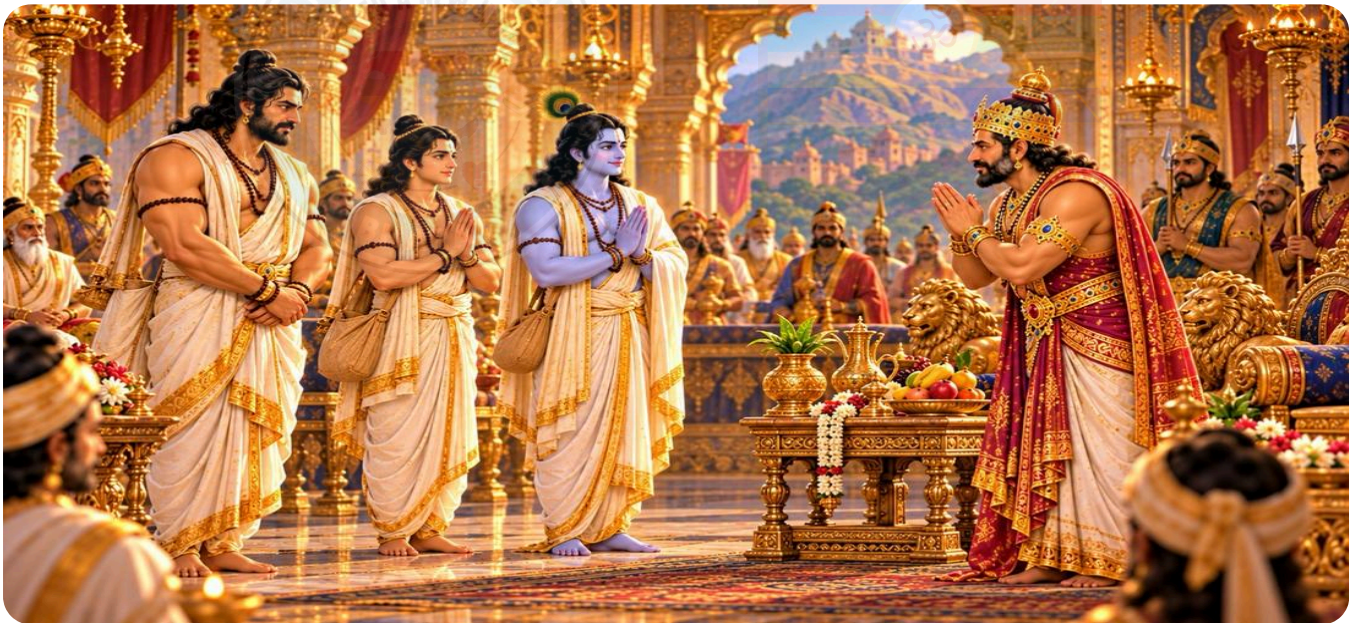
उनके स्वर, आकृति और प्रत्यञ्चा की रगड़ से बने अग्रबाहु के चिह्नों से जरासन्ध समझ गया कि ये ब्राह्मण नहीं, वेश बदले क्षत्रिय हैं, और उसे लगा कि इन्हें कहीं पहले देखा है। उसने मन में विचार किया: जब ये ब्राह्मण-वेश में मुझसे याचना करने तक आ गए हैं, तो मैं इन्हें यह शरीर भी दे दूँगा, जिसे त्यागना कठिन है। क्या विष्णु ने ब्राह्मण-रूप में बलि का ऐश्वर्य नहीं छीन लिया — और क्या फिर भी बलि की निष्कलंक कीर्ति दसों दिशाओं में नहीं गाई जाती? बलि जानता था कि वह वामन इन्द्र के लिए उसकी सम्पदा लेने आया है, गुरु शुक्राचार्य ने उसे रोका, फिर भी उसने पृथ्वी दान कर दी। उस क्षत्रिय के जीवन का क्या लाभ जो एक दिन गिर जाने वाले इस शरीर से विपुल यश के लिए प्रयत्न नहीं करता और ब्राह्मणों के लिए नहीं जीता?

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ।

हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥

ity udāra-matiḥ prāha kṛṣṇārjuna-vṛkodarān he viprā vriyatām kāmo dadāmy ātma-śiro 'pi vah

अर्थ: ऐसा विचार कर उस उदारबुद्धि राजा ने कृष्ण, अर्जुन और वृकोदर से कहा — ‘हे विप्रो, जो चाहो माँग लो; मैं तुम्हें अपना सिर भी दे दूँगा।’ (स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 27)



क्षत्रियों के प्रत्यञ्चा-चिह्न पहचानकर भी ब्राह्मण-वेश का आदर करते हुए उदार जरासन्ध अपने तीनों अतिथियों से कहता है कि जो चाहें माँग लें, उसका सिर भी (श्लोक 27)।

चुनौती प्रकट होती है

तब प्रभु ने स्पष्ट कहा। हे राजेन्द्र, हम भोजन माँगने वाले ब्राह्मण नहीं हैं; हम क्षत्रिय हैं और युद्ध की खोज में आए हैं। यदि आप स्वीकार करें तो हमें द्वन्द्व-युद्ध दीजिए। यह कुन्तीपुत्र भीम है, यह उसका छोटा भाई अर्जुन है, और मुझे इनका ममेरा भाई कृष्ण, आपका पुराना शत्रु जानिए।

जरासन्ध ज़ोर से हँसा और क्रोध में बोला। मूर्खों, यदि युद्ध ही चाहते हो तो युद्ध मिलेगा। किन्तु कृष्ण, तुमसे मैं नहीं लड़ूँगा; तुम कायर हो, युद्ध में जिसका साहस डगमगा जाता है, जो मेरे भय से मथुरा छोड़कर समुद्र की शरण में जा बैठा। अर्जुन मुझसे आयु में छोटा है और उसमें बड़ा बल नहीं; अकेला भीम ही मेरे समान है। यह कहकर उसने भीमसेन को एक विशाल गदा दी, दूसरी स्वयं उठाई और नगर से बाहर निकल आया।

सत्ताईस दिनों का द्वन्द्व

रंगभूमि में युद्धोन्मत्त दोनों वीर भिड़ गए और वज्र-सी कठोर गदाओं से एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। बाएँ-दाएँ विचित्र मण्डल बनाते हुए वे रंगमंच के दो नटों जैसे लगते थे, और जब गदाएँ टकराती थीं तो उनकी गड़गड़ाहट बिजली की कड़क या लड़ते हाथियों के दाँतों की टक्कर जैसी होती थी। एक-दूसरे के कन्धों, कटि, पैरों, हाथों, जाँघों और हँसलियों पर पूरे वेग से फेंकी गई गदाएँ चूर-चूर हो गईं, जैसे दो मदमत्त हाथियों के बीच आक की डालियाँ कुचल जाती हैं।

गदाएँ टूट जाने पर दोनों लोहे-से कठोर मुक्कों से लड़ते रहे, और उनके थप्पड़ों की आवाज़ वज्रपात-सी गूँजती थी। शिक्षा, बल और ओज में समान, कोई भी शिथिल न होता हुआ, दोनों लड़ते रहे पर निर्णय न हुआ। दिन में वे प्राणघातक युद्ध करते और रात में मित्रों की भाँति साथ रहते; इस प्रकार सत्ताईस दिन बीत गए।

कृष्ण का संकेत और जरासन्ध का पतन

अठ्ठाईसवें दिन भीम ने अपने ममेरे भाई से कहा, ‘माधव, मैं जरासन्ध को युद्ध में नहीं जीत पा रहा हूँ।’ कृष्ण अपने शत्रु के जन्म और मृत्यु का रहस्य जानते थे — कैसे जरा राक्षसी ने उसके शरीर के दो टुकड़ों को जोड़कर उसे जीवन दिया था। इस पर विचार कर उन्होंने भीम में अपना तेज भर दिया।

सञ्चिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ।

दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥

sañcintyāri-vadhopāyaṁ bhīmasyāmogha-darśanaḥ darśayām āsa viṭapaṁ pāṭayann iva sañjñayā

अर्थ: शत्रु-वध का उपाय सोचकर अमोघ दृष्टि वाले प्रभु ने एक टहनी लेकर उसे चीरते हुए भीम को संकेत से वह उपाय दिखा दिया। (स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 43)



अट्टाईसवें दिन जरासन्ध के जन्म का रहस्य जानने वाले कृष्ण एक टहनी लेकर भीम की आँखों के सामने उसे चीर देते हैं (श्लोक 43)।

महाबली और प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ भीम तुरन्त समझ गए। उन्होंने जरासन्ध को पैरों से पकड़कर धरती पर पटक दिया; एक पैर को अपने पैर से दबाकर और दूसरे को दोनों हाथों से पकड़कर उन्होंने उसे वैसे ही चीर दिया जैसे कोई महागज किसी शाखा को चीर देता है, और प्रजा ने अपने राजा के दो खण्ड देखे।



भीम संकेत समझ जाते हैं और दीर्घ द्वन्द्व समाप्त होता है; मगध का मुकुट धूल में पड़ा है, और कृष्ण तथा अर्जुन विजेता को गले लगाते हैं।

मगधेश्वर के गिरते ही प्रजा में भारी हाहाकार मच गया। कृष्ण और अर्जुन ने भीम को गले लगाकर उनका सम्मान किया।

सहदेव का अभिषेक और राजाओं की मुक्ति

तब प्रभु ने दो ऐसे कार्य किए जिनसे प्रकट हुआ कि वे क्यों आए थे।

सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूतभावनः ।
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ।
मोचयामास राजन्यान् संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥

*sahadevaṁ tat-tanayaṁ bhagavān bhūta-bhāvanaḥ abhyaṣiñcad ameyātmā magadhānām patiṁ
prabhuḥ mocayām āsa rājanyān saṁruddhā māgadhenā ye*

अर्थ: समस्त प्राणियों के उद्गम और अमेय स्वरूप वाले भगवान् ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव का मगध के स्वामी के रूप में अभिषेक किया, और उन राजाओं को छुड़ा दिया जिन्हें मगधराज ने बन्दी बना रखा था। (स्कन्ध 10, अध्याय 72, श्लोक 48)



प्रभु जरासन्ध के पुत्र सहदेव का मगध के राजा के रूप में अभिषेक करते हैं और उन राजाओं को मुक्त करते हैं जिन्हें जरासन्ध ने बन्दी बना रखा था (श्लोक 48)।

शत्रु के पुत्र को गिराया नहीं गया, उसका अभिषेक किया गया, और पर्वतों से घिरे कारागार के द्वार बन्दी राजाओं के लिए खुल गए। इसके साथ ही युधिष्ठिर के यज्ञ की एकमात्र बाधा दूर हो गई।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु आत्मसंयम से जीते जाते हैं। कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं कि वे, जो असंयमियों के लिए दुर्जय हैं, स्वयं पर शासन करने वाले राजा से जीत लिए गए हैं (श्लोक 10)। उन्हें हमारा सच्चा अर्पण संयमित मन और इन्द्रियाँ हैं, बाहरी वैभव नहीं।
2. कोई शक्ति उनके भक्त को पराभूत नहीं कर सकती। तेज, यश या धन के बल पर न देवता, न पृथ्वी का राजा प्रभु के भक्त को हरा सकता है (श्लोक 11)। जरासन्ध का बल अपने भक्त के माध्यम से कार्य करते प्रभु के सामने टिक न सका।
3. सेवा का फल ठीक उसी माप में मिलता है। युधिष्ठिर प्रभु की तुलना कल्पवृक्ष से करते हैं जिसकी कृपा हर सेवक को उसकी सेवा के अनुसार, बिना पक्षपात के, मिलती है। हम जो भी सच्चे मन से देते हैं, वे स्वीकार करते हैं।

4. नश्वर शरीर से अविनाशी खरीदा जा सकता है। वेश बदले अतिथि जरासन्ध को हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, शिबि और बलि का स्मरण कराते हैं, जिन्होंने क्षणभंगुर देह को स्थायी कल्याण में बदल दिया, और वह अपना सिर तक देने का संकल्प करता है (श्लोक 27)। शास्त्र प्रभु के विरोधी में भी इस उदारता का आदर करता है।

5. जो बल अकेले नहीं दे सकता, वह प्रभु देते हैं। भीम युद्ध तब तक समाप्त नहीं कर पाते जब तक कृष्ण उनमें अपना तेज नहीं भरते और टहनी नहीं दिखाते (श्लोक 43)। जहाँ हमारी सामर्थ्य समाप्त होती है, वहाँ से उनका मार्गदर्शन हमें आगे ले जाता है।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में हृदय को जो छूता है, वह यह है कि प्रभु इसके हर पात्र के साथ कितनी कोमलता से पेश आते हैं। वे युधिष्ठिर की अभिलाषा को आशीर्वाद देते हैं, क्योंकि वह उन्हीं की उपासना है। वे जरासन्ध को स्वयं नहीं मारते; वे अभिमानी राजा को अपना वचन और अपना सम्मान रखने देते हैं, और इतने दिनों से जूझते भीम को विजय का स्वाद चखने देते हैं। जिसने उन्हें कायर कहा, उसे भी शाप नहीं, उसके पुत्र के लिए मुकुट मिलता है। हम भी प्रायः भीम की तरह पूरी शक्ति से लड़ते हैं और पाते हैं कि शक्ति पर्याप्त नहीं; तब प्रभु का उत्तर एक छोटा-सा संकेत होता है, यदि हम विनम्र होकर उनकी ओर देखें। वे हमारा संघर्ष छीनते नहीं; रंगभूमि के किनारे खड़े होकर दिखाते हैं कि उसे कैसे पूरा करना है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज एक ऐसा संघर्ष चुनिए जिसमें आप केवल अपनी ही शक्ति पर निर्भर रहे हैं। जैसे भीम अट्ठाईसवें दिन रुके, वैसे ही रुकिए और प्रभु से सच्चे मन से कहिए कि आप इसे अकेले नहीं जीत सकते; फिर दिन भर उनके छोटे-से संकेत की प्रतीक्षा कीजिए और उस पर चलिए। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का बहत्तरवाँ अध्याय दिखाता है कि प्रभु एक भक्त की प्रार्थना को, उसी भक्त के भाइयों के द्वारा, उस एकमात्र राजा को हटाकर पूर्ण करते हैं जो उसके विरुद्ध खड़ा था। इसका एक महान् सूत्र स्वयं कृष्ण के मुख से निकला है: वे संयमियों से जीते जाते हैं, और जो उनका है उसे कोई पराभूत नहीं कर सकता। हम जिस भी जरासन्ध का सामना करें, यह वचन हृदय से लगाए रखें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 72, पृ. 423–427।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।

- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-72-the-slaying-of-jarasandha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

